उसका तर्क

मैं दीनू काका की गुमटी पर चाय पीने पूरे 10 दिन बाद पहुंचा. क्योंकि मैं 10 दिन तक बाहर था. रोज़ सुबह मैं दीनू काका की गुमटी पर चाय पीने पहुंच जाता था. यह मेरा रोज़ का रूटीन था. मेरे लिए जब तक चाय बनती, तब तक मैं आधा पेपर पढ़ चुका होता. मेरे पहुंचते ही दीनू काका बोले- बाबूजी बहुत दिनों के बाद आये हो ?

''मैं 10-12 दिन के लिए बाहर चला गया था.'' मैंने उत्तर दिया.

''अच्छा-अच्छा मैं कुछ और समझा था ?''

''क्या समझे थे - दीनू काका ?'' मैंने प्रश्न वाचक दृष्टि से पूछा.

''जब से शक्कर के भाव दूगने हो गये. तब से मैंने चाय का रेट दूगना कर दिया.'' यह कहते समय दीनू काका का सीना गर्व से चौड़ा हो गया. आगे बोले- अब मैंने 10 रूपये की चाय के 20 रूपये कर दिये है. शायद यह सोचकर मैं समझा कि बाबूजी इसलिए चाय पीने नहीं आ रहे है.

''ऐसी बात नहीं है दीनू काका. यह तो आप प्रतिदिन मेरे लिए बिना शक्कर की चाय पिलाते तब भी पूरे पैसे देता. शक्कर के दाम बढ़ जाने से मेरे ऊपर तो कोई प्रभाव नहीं पड़ा. मैं शुगर का मरीज बिना शक्कर की चाय पीता हूँ. कम से कम मेरे लिए तो वही पुराने भाव रखना चाहिए.'' मैंने अपना सुझाव दिया.

''देखों बाबूजी, महंगाई सबके लिए बड़ी है. जब मैं 10 रूपये में सबको चाय देता था. आप भी फीकी चाय 10 रूपये में ही पीते थे.

''दीनू काका अपना तर्क देते हुए बोले. तब मैं बोला- ठीक है काका, सबके साथ समान व्यवहार कीजिए ?

रमेश मनोहरा
शीतला माता गली, जावरा (म.प्र.)

कैफे, कॉफी और कॉन्सेप्ट

नए शुरू किए गए कैफे एक्सप्रेस के काउंटर पर सिर टिकाकर संजय बैठा था। लाखों रुपए का इन्वेस्टमेंट और महंगा इंटीरियर होने के बावजूद ग्राहक जम नहीं रहे थे। संजय के मन में एक ही मंथन चल रहा था, क्या यह कैफे बंद कर दूं? उसी समय उसके दादा रमनलाल कैफे में आए। संजय की उदासी देखकर उन्होंने कहा, संजय, मुझे तुम्हारी स्पेशल गरम एस्प्रेसो और एक कोल्ड कॉफी बनाकर दो। संजय ने उलझन में पड़कर दोनों कॉफी बनाकर टेबल पर रख दीं। रमनलाल ने पहले गरम एस्प्रेसो की तरफ इशारा करके कहा, 'जरा इसे देख, इसमें से भाप निकल रही है। अगर इसे दस मिनट ऐसे ही रखा रहने दें, तो यह ठंडी पड़कर बिलकुल बेकार हो जाएगी। तुम्हारा इन्वेस्टमेंट और तुम्हारा उत्साह इस एस्प्रेसो जैसा है। अगर इसे तुरंत ही सही एक्शन में नहीं बदला गया, तो समय बीतने के साथ यह उत्साह ठंडा पड़ जाएगा। 'फिर दादा ने कोल्ड कॉफी की तरफ उंगली उठाई, 'और इसे देखो, इसमें बर्फ पिघलने के साथ यह अपना स्वरूप बदलती है, लेकिन स्वाद बनाए रखती है। व्यापार में परिस्थिति के अनुसार फ्लेक्सिबल बनना सीखो। ' संजय ने उत्सुकता से पूछा, 'लेकिन दादा, मैं कहां गलती कर रहा हूं? रमनलाल ने टेबल पर रखी शक्कर का चम्मच दिखाकर कहा, 'हर कस्टमर की पसंद अलग होती है। किसी को ज्यादा शक्कर चाहिए, तो किसी को कड़क कॉफी। तुम सिर्फ महंगे इंटीरियर और मशीनें दिखाते हो, लेकिन कस्टमर के स्वाद को समझने के बजाय सभी को एक ही चीज परोसते हो। जिस दिन तुम कस्टमर की जरूरत पहचानकर उसे उसके स्वाद के अनुसार सर्विस दोगे, उस दिन तुम्हारा कैफे चलने लगेगा।' अंत में उन्होंने सामने पड़े साधारण कांच के कप की तरफ इशारा करके कहा, 'संजय, अगर मैं यह गरमागरम उबलती कॉफी इस पतले कांच के कप में सीधे उड़ेल दूं तो क्या होगा? ' संजय ने तुरंत कहा, 'दादा, कप टूट जाएगा, गरम कॉफी के लिए कप को पहले थोड़ा गुनगुना करना पड़ता है या फिर ऐसा कप इस्तेमाल करना पड़ता है, जो गर्मी सहन कर सके।' रमनलाल ने शांति से स्माइल दी, 'बस संजय, तुम अभी इस कांच के कप जैसी गलती कर रहे हो। तुम नए बिजनेस के उबाल और शुरुआत की असफलता के ताप को सीधे अपने मन पर झेल रहे हो, इसलिए तुम्हारा मन टूट रहा है। व्यापार में शुरुआत का समय हीटटेस्टिंग जैसा होता है। अगर तुम ताप सहन करने की क्षमता नहीं विकसित करोगे, तो कितना भी इन्वेस्टमेंट क्यों न हो, तुम हार जाओगे। ' रमनलाल ने खड़े होते-होते आगे जोड़ा, 'कॉफी कितनी भी महंगी हो संजय, लेकिन उसका सही स्वाद तो घूंट भरने के बाद ही पता चलता है। व्यापार की सफलता इन्वेस्टमेंट से नहीं, कस्टमर को दिए गए अनुभव से तय होती है।' संजय के चेहरे पर छाया डर अब गायब हो चुका था और उसके मन में एक नया, स्पष्ट उत्साह था।

वीरेंद्र बहादुर सिंह
नोएडा-मो- 8368681336

एक गिलास पानी

शाम की चाय के बाद पिता सोफे पर बैठे थे। उम्र ने घुटनों में जकड़न और आवाज में धीमापन भर दिया था। उन्होंने बेटे को आवाज दी–

'बेटा, एक गिलास पानी पिला देना। '

बेटा मोबाइल पर कुछ देखते हुए उठा। फ्रिज से पानी की बोतल निकाली और सेंटर टेबल पर रख दी।

'पानी रख दिया है, पापा। 'पिता ने बोतल को देखा, फिर बेटे को– 'बेटा, एक गिलास पानी पिला देना। ' बेटा कुछ खीझा। रसोई में गया, खाली गिलास लाकर मेज पर रख दिया।

'अब ? ' पिता की आवाज इस बार थोड़ी तल्ख थी– 'बेटा, मैंने पानी पिलाने को कहा था। ' बेटे ने लंबी साँस ली। बोतल उठाई, गिलास में पानी भरा और पिता के हाथ में थमा दिया। पिता के चेहरे पर हल्की मुस्कान आई। 'अब समझे? यही शिष्टाचार है बेटा। काम करना ही पर्याप्त नहीं होता, काम करने का ढंग भी रिश्तों को अर्थ देता है। यही संस्कार परिवार की रीढ़ होते हैं। ' बेटा मुस्कुराया, लेकिन उसकी मुस्कान में असहमति थी। 'पापा, ये सब पुराने जमाने की औपचारिकताएँ हैं। आज की दुनिया में समय बचाना और लक्ष्य पाना जरूरी है। पानी चाहिए था, मैंने बोतल रख दी–काम हो गया। आपकी पीढ़ी इन औपचारिकताओं में उलझी रही, इसलिए पीछे रह गई। हम सीधे लक्ष्य पर जाते हैं, इसलिए आगे हैं। '

पिता कुछ देर चुप रहे। तभी बेटे का मोबाइल बजा। वह उठकर दूसरे कमरे में चला गया। पिता ने धीरे से गिलास होंठों तक पहुँचाया। पानी पीते हुए उनकी आँखें दरवाजे पर टिक गईं। उन्हें अचानक अपना बचपन याद आया– जब उनके पिता खाट पर बैठे कहते थे, 'बेटा, जरा पानी पिला देना। ' और वे दौड़कर गिलास भरते, दोनों हाथों से पिता को थमाते थे। तब पानी सिर्फ पानी नहीं था– उसमें आदर मिला होता था। पिता ने खाली गिलास मेज पर रखा और बुदबुदाए– 'बेटा, तुम शायद बहुत आगे निकल गए हो... बस यह देखना बाकी है कि कहीं आगे जाते-जाते पीछे कुछ बहुत जरूरी तो नहीं छोड़ आए। '

ज्ञान मुकेश वर्मा
विकास नगर, कुर्जी पटना -800010

मुफ्तखोरी की दीमक

जिंदगी के सत्तर वर्ष पेट पालन की चक्की में पिसत 'पिसते बेकार गये। मै हूँ जन्मजात अक्ल का दुश्मन। मगर इस वर्ष पहली बार पता ही नहीं चला और कब भोले का प्रसाद गले उतर गया। इधर गोली गले उतरी और जंग लगे नट बोल्ट खुल गये। वर्षो से कुंठित खुपड़िया काम करने लगी। अब मेरे समझ आने लगा कि महादेव का तीसरा नेत्र कैसे खुल जाता है। वो भंग के साथ धतूरा भी सेवन करते हैं तो आंखें तो रक्तिम होनी ही है। खैर.., भेजा ओवरहालिंग की मशीन सा धकाधक चलने लगा। जैसे ही द्वार खुला, सांसारिक बातें अंदर घुसने लगी....! पोल खुलने लगी, पुरानी बातों का रेला अंदर घुस उत्पात मचाने लगी, इतने उत्पात में भी एक बात अलग सी नजर आ रही थी कि गत अस्सी वर्षो में देश की जनता मुफ्तखोर हो चुकी है। ये बिमारी कैंसर की भांति अंदर ही अंदर फैल बढती रही कि यहाँ के लोग सोते-जागते मुफ्त की मलाई के लिए तरसने लगे हैं।दरवाजे खुलते माथा ठनकने लगा। बहुत कुछ समझ आने लगा, जो समझ आने लगा वो आप सब को समझा कर ही मानूंगा। बहुतों को बताया कि आम आदमी तो मेहनत कर के खाता है पर पिछले दरवजे मुफ्त का लेने को तैयार रहते हैं। कान किधर से ही पकड़ो बात तो वहीं की वहीं। देश की जनता को भी मुफ्त की लत लग गई जैसे बेवड़ा पीने को आतुर रहता है। समय पर दारू न मिले तो देह टूटने लगती है वैसे ही मुफ्त का माल न बँटे तो राजनीति कैसे चलेगी...! इस देश में गणतंत्र या लोकतंत्र या जनतंत्र या फिर लोकतंत्र है, जहाँ ये तंत्र है वहाँ चुनाव का मंत्र है और इसे सिद्ध करने को वोट यंत्र है। पहले चुनाव से आज तक वोटों के लिए मुफ्तखोरी के उस्तरे को धार लगाई जाती है। बस, एक बार सरकार बनने की देर है सारे खजाने पर सरकार का कब्जा हो ही जाता है। दशकों से नेता और अफसर मिल सरकारी माल को मुफ्त के नाम कर देते हैं। सरकार सौ का माल जनता को आधोआध में निपटाते रहे, बाकी धन सबसिडी के बहाने बिखेरते रहतेहैं। सरकार के क्या, घाटे में घाटा बढता जाये तो किसी के क्या जाता है..? म ुफ्तखोरी के दीमक है, जहाँ चिपकती है उसे चट कर के दम लेती है। अंदर ही अंदर निपटा दे तो सरकार किस खेत की मूली है..? स्मेकिये की तरह मुफ्तखोरो को जितना देवो उतना कम है। मुफ्तखोरो को तो चाहिए हर वक्त मुफ्त पर आखिर खोखली सरकार कितने दिन बीस रपये में खरीद दो रूपये में बाँटती रहेगी। ग्यारह सौ का गैस सिलेंडर पांच सौ में दे तो सरकार बहुत अच्छी लगती है मगर दाम बढाते ही शोर शुरू और सरकार हो जाती है जन विरोधी। किसान नेता स्स्क की गारंटी मांगते हैं पर कभी कोई ये भी कहता है कि खाद, बीज, बिजली पर सबसिडी नहीं लेंगे। पानी भी खेत री मेड़ तक मुफ्त चाहिए। हक समझ मुफ्त मांगने वाले कब सोचते हैं कि सरकार कहाँ से लायेगी साथ में किसानी कमाई भी टैक्स फ्री चाहिए। क्षमतानुसार यदि टैक्स लगा दे तो मच जायेगा सियासी घमासान और सरकार किसान विरोधी फिर भी कर्जमाफी तो पैंडिंग की पैंडिंग...! रकारी महकमों, कल -कारखनों में बैठे अफसरऔर र्मचारी काम करते ऐसे शर्माते हैं जैसे कोई नई नवेली दुल्हनिया घूंघट मे मेंहदी रचे हाथ लजाती सी हल्लू हल्लू हिलाती है। घाटा होता है तो होने दो, इन्फलेशन बढता है बढते दो, जबाबदेही किसकी और कहाँ..? यदि सरकार कुछ बोले तो सियासत चमकाते हड़ताल, धरने प्रारंभ। मुफ्त डकारने को मिलता रहना चाहिए, हाथ बांधते देवी रिसायमान...! मुफत चाहने वाले कौन से कम होते हैं।जन सेवा के बदले सैलरी तो लेते ही है साथ में पैंशन अलग। ये कौन सो कम मुफ्तखोर है, इनको भी सब कुछ फ्री चाहिए। और तो और नेताओं की कैंटीन के भाव तो मुफ्त को भी पीछे छोड़ देते हैं। नेता खुद मुफ्तखोर और पूरे देश को मुफ्त की चाट लगा दी। मुफ्त बांटते-बांटते सरकार रह गई खोखली, एक बार तो सोना गिरवी रखना पड़ा। सड़कें चाहिए, बिजली चाहिए,रेल तक सब सस्ते चाहिये। बातें तो विकास की पर विकास के लिए धन चाहिए, कहाँ से लायेगी भूखी सरकार। आखिर करे तो क्या, इधर गढ्ढा उधर खाई। वोटों के चक्कर में भाषण तो दे देते है पर देने-लेने को भगवान का नाम..! बंगाल मे प्रचलित कहावत है - ' बारह मासे तेरह ठो पूजा' परंतु ये चुनाव तो साल भर चलते ही रहते हैं। इतना बड़ा देश, इतनी प्रशासनिक सीढियाँ, पंचायत से लेकर संसद तक, किसी न किसी का चुनाव होते ही है, जाने कब होगा एक देश एक चुनाव। चुनावी खर्च तो दलदल है, जो अंदर घुसा वो धसता ही जायेगा। चुनाव से सारे दल रूबरू होते ही हैं। जबरदस्त खरच, निकालने को जरिया तो चाहिए ही चाहिए.., कोई 'कटमनी' लेता है तो कोई चंदा इकट्ठा करते हैं, परंतु सारा का सारा बिना हिसाब का खर्च, यहीं से ब्लेक व्हाइट की गंगा यमुना बहती है। कौन हिसाब रखे, इस ढेर पर बैठी सरकार तो भूखी की भूखी रह जाती है, परंतु मुफ्त री गाड़ी तो सरपट दौड़ती है। ये चुनाव तो क्या क्या रंग दिखाता है। दिल्ली में केजरीवाल तो मुफ्तखोरी का प्रणेता है। मुफ्त के आधार पर दिल्ली का मुख्यमंत्री बन बैठा, पानी बिजली मुफ्त तो झुग्गी को पक्का करने की इजाजत मुफ्त। मुफ्ता-मुफ्ती में दिल्ली की गद्दी संभाल ली मुफतिया। सारे दल लगे हैं मुफ्त की होड़ में, केंद्र सरकार तो अस्सी करोड़ को मुफ्त राशन बांट ही रही है। कई प्रत्यक्ष तो कोई परोक्ष, गीत मुफ्त के ही गाये जा रहे हैं पर किसे फुर्सत है सोचने की कि आने वाली पीढियां काम के लायक ही नहीं रहेगी, बस सब मुफ्त के भरोसे रहेंगे। काम करने से हड्डियां हरिकीर्तन करने लगेगी। एक राजस्थानी कवि की पंक्तियां उभर गई --- 'फोकट रो खावण री जे म्हारी नींत नहीं होती तो धरती परां धन हाळां री जीत नहीँ होवंती.... । ' अभी भी वक्त है कि जनता मुफ्तखोरी की नियत छोड़ दे। चुनाव तो चुनाव है, चुनाव लड़ने से सत्ता मिलती है, कुर्सी पर बैठने से मुफ्त की गंगा बहती है। मुफ्तखोरो का क्या, बनारसी घाट के पंडों से तैयार मिलते हैं, एक ढूंढों हजार मिलते हैं। चुनावों में वोटों के चक्कर में जात धर्म भी देखा जाता है, मेरे-तुम्हारे भी होते हैं मुफ्त की गंगा उसी आधार पर बहती है, मुफ्त रेवड़ियों का बंटवारा भी वोटर देख कर किया जाता है। दारू और ठेकेदारो को नकद भी बांटे जाते हैं। रैलियों में आने वाले की जवानी मुफ्त में बेकार जा रही है। मंच पर घने जोर से कहा जाता है शराबबंदी के लिए पर मंच से उतरने पश्चात डेरे पंहुच कर चेलों को पैग बनाने का हुक्म दागते हैं। चेले तुरंत प्याले सजाते हैं, नेताजी दो पैग चढा कर चलते बनते हैं पर चेले भैरों के भोपों से बोतलों की बोतलें छान लेते हैं, मुफ्त में गला गीला करने में क्या जाता है। दारू के लिए दाम है पर कोरोना का टीका तो मुफ्त ही चाहिए। कैसी हद मुफ्तखोरी की...! गरीब किसान चार महीने खेतों में काम छोड़ कर बॉर्डर पर बैठ जाते हैं तो उनके खेतों में काम कौन करता है। सत्ता पक्ष कहता है सब नकली किसान नकली थे। वहाँ भी प्रदर्शन करने वालों के लिए सारी व्यवस्था मुफ्त की हो रही थी, क्या नहीं था..., खाना-पीना, जिम, दंगल, सिनेमा, तो क्यों खेतों में काम करे। कई तो परिवार के परिवार मुफ्तिया जिंदगी जी रहे थे। आज देश के रोम रोम में मुफ्तखोरी जम चुकी है, परंतु इसका 'ऑफ्टर इफैक्ट' को समझने के लिए किसे फुर्सत है। नेता कुर्सी से खुश, मुफ्तिये मुफ्त से प्रसन्न, विकास हो तो हो, वर्ना राधे भजो जनता देखो मजो। विकास का आधा बजट तो ने तैयार, चेले और ये मुफ्तिये जीम लेते हैं, आधे में जो हो जाये वो सही। आधा-अधूरा आखिर मंहगाई ही बढाता है। मलाई की मुफ्तिया डॉज से पांच दस पइसा गरीबों के पल्ले भी पड़ जाता है परंतु मरता तो मध्यम श्रेणी को है। मंहगाई और टैक्स के पाटों में पिसता तो मध्यम ही है। वाह रे मुफ्तखोरी...! सरकारी शंख बजाती मीडिया सूखे चंदन घिसती है विज्ञापन का जल मिलाकर। विज्ञापन तो नई पीढी को गूंगा-बावरा बना ऊंचे सपने जगाती है, सपना तो सपना ही होता है पर बिना धन कैसे पूरे, मुफ्त मिले तो सही वर्ना अपराध जगत में एंट्री तो मुफ्त ही मिल जाती है। खून में मिली मुफ्तखोरी तो इलास्टिक लिमिट भी बढती है वैसे ही आने वाली पीढी हरामखोर होने के रास्ते चल पड़ती है। गरीबी और बढती है, अमीरों के कोई फर्क नहीं पड़ता, पिसता तो मध्यम वर्ग है। लतखोरों की तरह मुफ्तखोर भी काम करना भूल जाता है। दुर्भाग्य देश, का कि दीमक बन मुफ्तखोरी देश की अर्थव्यवस्था अंदर ही अंदर चाट रही है। जय बोलो मुफ्तखोरी की...!

छत्र छाजेड़ 'फक्कड़ 'दिल्ली - 110092
मो.- 9350051179

कुछ नहीं से कुछ तो भी, फिर भी ठीक है

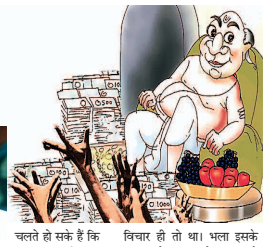

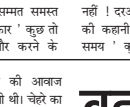

आजकल की राजनीति में राजनीति के नाम पर ' कुछ तो भी ' होने लगा है। और कुछ नहीं तो गढ़े मुर्दे उखाड़कर उसका पोस्टमार्टम किया जा रहा है। मजे की बात यह है कि हर एक के द्वारा किए गए ऐसे पोस्टमार्टम की रिपोर्ट अलग-अलग नतीजे पर पहुंच रही है / या पहुंचाई जा रही है। अब आप ऐसा समझ सकते हैं कि यह ' कुछ तो भी ' की बला डेढ़ दो दशक से चल रही है।

तो ऐसा नहीं है, वास्तव में इस ' कुछ तो भी ' के चलते तो यह दुनिया आखेट युग से लेकर आज तक की तरक्की का सफर पूरा कर चुकी है। दरअसल सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक जगत में भी इस समय ' कुछ तो भी ' होने लगा है। जिसके चलते हर क्षेत्र का वातावरण ही कुछ तो भी होता जा रहा है।

गरज यह कि आजकल के दौर में जिस चिड़िया का बोलबाला है - उस चिड़िया का नाम ही ' कुछ तो भी ' है। वैसे एक बात जरूर है कि आज दुनिया ने जितनी तकनीकी तरक्की की , वह ' कुछ तो भी ' की ही देन थी। अगर विज्ञान की गहराई में गोते लगाए तो हम पाएंगे कि किसी समय किसी ने लीक से हटकर सोचा, बहुत गहराई से सोचा, सोचा भी ऐसा जो किसी की सोच में आ ही नहीं सकता था। साफ-साफ कहे तो उन्होंने ' कुछ तो भी ' ही सोचा।

अब आप नतीजा देखिए, आदमी को धरती छोटी पड़ने लग गई है।

अब वह अंतरिक्ष की दुनिया में अपना बसेरा स्थापित करने की जुगाड़ में नजर आता है। तनिक सोचिए, विज्ञान सम्मत समस्त खोज एवं आविष्कार ' कुछ तो भी ' सोचने और करने के चलते हो सके हैं कि नहीं ! दरअसल हर आविष्कार की कहानी के मूल में किसी समय ' कुछ तो भी ' सोच विचार ही तो था। भला इसके अभाव में हम आखेट युग से आगे बढ़ भी कैसे सकते थे ? अब आप ही बताइए कि ऐसे दौर में डाकू को डाकू ही समझे और साहूकार को साहूकार ही समझे या कों ऐसा समझने की जल्दबाजी कतई नहीं करे।

दरअसल तकनीक की दुनिया ने दुनिया वालों को ठहरे हुए पानी में कंकर फेंक कर लहरों की गिनती के आनंद से परिपूर्ण कर दिया है।

आजकल के जमाने में यदि कोई ईमानदार है, तो क्या पता कुछ थोड़ा आगे जाकर कहीं कोई बंदा उसकी ईमानदारी का कोई प्रमाण मांग ले ?

और इसके अभाव में उसे बेईमान निरूपित कर देवें।इसी तर्ज पर आज कोई बेईमान है, तो क्या पता कल को कोई उसके ईमान की सौगंध खाकर दिन को दिन कह दे ? गहन चिंतन मनन के उपरांत अपुन तो इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जब जिसे जो जैसा लगे, तब उसे उस जैसा ही मान लिया जाए।

> तो ऐसा नहीं है, वास्तव में इस ' कुछ तो भी ' के चलते तो यह दुनिया आखेट युग से लेकर आज तक की तरक्की का सफर पूरा कर चुकी है। दरअसल सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक जगत में भी इस समय ' कुछ तो भी ' होने लगा है।

अब आगे जाकर कौन क्या गुल खिला दें, उससे अपुन को कोई फर्क नहीं पड़ेगा। इसलिए जमाने की हवा के साथ बहना ही श्रेयस्कर है। कुल मिलाकर यह बात कुछ तो भी नहीं है कि ' कुछ तो भी ' करते हुए भी आदमी अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग ऊंचाइयों तक पहुंच सकता है। इसलिए और कुछ नहीं तो कुछ तो भी जरूर कीजिए।

राजेंद्र बज

कहानी

वह बनी न कुंती

सुबह सवा चार बजे मोबाइल में सेट अलार्म ने गाना शुरू किया। बंद अलसाई आंखों को जबरन खोलने की कोशिश करती पूजा बगल में सोए सात साल की बेटी को पुचकार कर जगाती हुई लंच बॉक्स की तैयारी की योजना बना लेती है। नींद भरी आंखों को भींचकर काव्या बोली, 'थोड़ी देर और सोने दो न मां। ' 'स्कूल से लौट के सो लेना बेटा।' बेटी को यूनिफॉर्म पहनाती, लंच बॉक्स पैक करती पूजा की नजर बार बार घड़ी पे चली जाती है कि कभी वक्त उस से तेज रफ्तार से न निकल जाए। काव्या के साथ-साथ खुद भी तैयार हो कर समय से काम पर जाने की जद्दोजेहद अब आदत बन चुकी थी। स्कूल बस में बैठी काव्या प्यारी सी स्माइल के साथ मां को बाय करती तो पूजा की सारी थकान उतर जाती और एक नई ऊर्जा के साथ वो अपने गंतव्य पे निकल पड़ती। ट्रेनिंग कॉलेज में लेक्चरर की भूमिका में पूजा वहां पढ़ रहे कई युवा बच्चों की आइडियल लेडी थी। क्लास रूम में मुखर वक्ता पूजा की आवाज सम्मोहित करने वाली थी। चेहरे का न्यूड मेकअप लुक उनकी सौम्यता को चार चांद लगा देता था। शान्त, गंभीर पूजा मैम अभिवादन के प्रतिउत्तर में मुस्कुरा देती तो बच्चों का जैसे दिन बन जाता। बेहद कॉन्फिडेंट दिखने वाली पूजा मैम अंदर से कितनी बिखरी हुई है कोई भी न जान पाता कभी भी, अगर ये वाकया न हुआ होता। काव्या के स्कूल से आए एक फॉर्म पर पिता के नाम वाले कॉलम को खाली छोड़ कर जमा करने की वजह से काव्या को ओलंपियाड में भाग नहीं लेने दिया गया। वो सीधे स्कूल की प्रिंसिपल के ऑफिस में पहुंची और बेटी को एग्जाम में बैठने देने की रिक्वेस्ट करने लगी।लेकिन प्रिंसिपल का कहना था कि पिता के नाम का कॉलम खाली सबमिट नहीं किया जा सकता, जब तक कोई ठोस कारण नही दिया गया हो। मजबूरन अपनी बेटी के उज्ज्वल भविष्य के लिए पूजा को अपनी जिंदगी का बिखराव प्रिंसिपल मिसेज रॉय के सामने रखना पड़ा। अपनी दर्द भरी कहानी कहती पूजा की आंखें लगातार बरस रही थीं, मिसेज रॉय की आंखों में भी दर्द और सहानुभूति आंसू बनके उभर आए। एक दूसरे के साथ कितने खुश थे पूजा और अमर। विवाह की तारीख तय हो चुकी थी।? विवाह से पहले अमर को इंडियन आर्मी ज्वाइन करना पड़ा, सेकंड लेफ्टिनेंट। शादी से पहले लम्बी छुट्टी लेके आने के लिए। जाने से पहले वो पूजा से साथ अच्छे से वक्त बिता कर जाना चाहता था। ऐसी ही एक शाम प्रेम के अतिरेक में,भावनाओं का प्रवाह उन्हें बहा ले गया। जाते वक्त अमर ने पूजा को गले लगा के कहा बस यूं गया और यूं आया, फिर धूमधाम से ले जाऊंगा अपनी दुल्हन। पूजा भीगी आंखों से मुस्कुराती देखती रही। प्लेन हवा से बाते करने लगा। कुछ ही मिनटों बाद एक दर्दनाक खबर ने पूरे शहर को हिला दिया। प्लेन क्रैश होने की खबर। सभी यात्रियों के मारे जाने की खबर। पूजा की तो दुनिया ही लुट गई। इस सदमे की वजह से वो एकदम टूट गई। वह चुप खामोश शून्य में देखती रहती।पर समय कहा रुकता है किसी के आने-जाने से, वो तो अपनी गति से बीतता रहता है । इसी दौरान पूजा को अपने प्रेग्नेंसी के बारे में पता चला और उस दिन वो फूट-फूट कर रोती रही। उसे समझ नहीं आ रहा था कि नियति क्यूं खेल रही है उसके साथ। मां-पापा अबॉर्शन के लिए समझाते तो एकदम से बिफर पड़ती। निर्णय लेना कितना कठिन होता है उस दिन समझ आया। फिर भी अपने इरादों को समेटकर निर्णय लिया पूजा ने कि बच्चे को जन्म देगी और पालेगी भी। इस निर्णय से सभी सन्न रह गये। उसके मां-बाप के साथ-साथ अमर के पापा भी इसके खिलाफ थे। समाज का डर बेटी के प्रेम से बड़ा बन गया। अपनों ने ही मुंह फेर लिया। हर तरफ से हताश निराश, कहां जाती अकेली। ऐसे में साथ दिया उसकी दाई मां ने, जिन्होंने उसे पाला था। अब काव्या की नानी मां बन गई। पांच साल तक वो अपनी बेटी को उनके साथ रहकर पालती रही। किंतु ईश्वर ने उनका भी साथ छीन लिया। वक्त सबसे बड़ा गुरु होता है। सब कुछ सिखा देता है। दो साल हो गए पूजा को हिसार से लखनऊ आये।अपनी बेटी के उज्ज्वल भविष्य के लिए, आज फिर एक निर्णय लेने की बारी थी।और वो निर्णय था काव्या को पिता का नाम देने का निर्णय। अपने प्रेम की आखिरी निशानी को नाम देने का निर्णय। कानून और समाज भले इस रिश्ते को स्वीकृति नहीं दे। लेकिन पूजा और अमर ने एक दूसरे को पति-पत्नी मान लिया था। एक महीने भी तो नहीं बचे थे शादी होने में। शादी के बाद ये दुर्घटना हुई होती तो आज पूजा लेफ्टिनेंट अमर की वीरवधु होती। और सारे अधिकार मिलते काव्या को। वो लेफ्टिनेंट अमर सिन्हा की बेटी होती। गर्व से अपने पिता का नाम लेती। तो आज क्यों नहीं? उसने अपने आंसू पोंछ कर खुद को संयत किया। प्रिंसिपल रॉय ने पूजा को कलम देते हुए उसके द्वारा लिए निर्णय का समर्थन किया। पूजा ने फॉर्म के उस कॉलम को पूरा किया, फादर्स नेम - लेट लेफ्टिनेंट अमर सिन्हा ।।

ज़ सविता सिंह
शिक्षिका, बक्सर (बिहार)